चतुर्थ अध्याय

शब्द और अर्थ का सम्बन्ध

शब्द

'शब्द' पद के विभिन्न अर्थ होते हैं। विस्तृत अर्थ में शब्द ध्वनि मात्र है जिसे श्रौत इन्द्रिय द्वारा सुना जाता है। श्रौत इन्द्रिय दो तरह से ध्वनि को सुनता है— एक मात्र आवाज के रूप में और दूसरा वर्ण-उच्चारण के रूप में। जैसे— ढोलक की थाप-थाप, नगाड़े की नगड़-नगड़, घंटी की ट्रिन-ट्रिन आदि। इस तरह की आवाज को ध्वन्यात्मक शब्द कहते हैं। यहाँ मात्र ध्वनि सुनायी पड़ती है। लेकिन क, ख, ग आदि वर्णों के उच्चारण से ध्वनि के साथ-साथ वर्ण भी सुनायी पड़ती है। अतएव ध्वनि के अर्थ में शब्द दो प्रकार की होती है— ध्वन्यात्मक शब्द तथा वर्णात्मक शब्द। वर्णात्मक शब्द दो प्रकार का माना गया है— सार्थक और निरर्थक। जिस वर्णात्मक शब्द का कोई अर्थ होता है, उसे सार्थक कहते हैं। जैसे— घट, गाय आदि। जिस वर्णात्मक शब्द का कोई अर्थ नहीं होता, उसे निरर्थक कहते हैं। जैसे— टघ, यगा आदि।

शब्द का दूसरा अर्थ संकुचित है। इस अर्थ में शब्द वह है जो किसी वस्तु का संकेतक या निर्देशक होता है। जैसे— 'घट' शब्द घड़ा नामक वस्तु की सूचना या निर्देश देता है। इसलिए घट सूचक, निर्देशक या संकेतक है। सार्थक वर्णात्मक शब्द ही इस अर्थ में शब्द है। ऐसे शब्द में अन्तर्निहित शक्तियाँ होती हैं जिनसे ये शब्द वस्तुओं को सूचित या निर्देशित कर पाते हैं। शब्द का तीसरा अर्थ अत्यन्त संकुचित है। इस अर्थ में शब्द आप्तवाक्य को कहते हैं। आप्तवाक्य आप्त कथन है जो किसी विश्वसनीय और प्रामाणिक व्यक्ति का कथन होता है। जैसे— ऋषि-मुनियों का कथन।

भारतीय भाषाविश्लेषण की दृष्टि से शब्द का तात्पर्य वर्णात्मक शब्द है, लेकिन निरर्थक नहीं। दर्शन के क्षेत्र में निरर्थक शब्द का प्रयोग नहीं होता है। शब्द का तात्पर्य सार्थक शब्द ही है। न्याय दर्शन में आप्तवचन को ही शब्द कहा गया है। अतएव भाषाविश्लेषण (न्याय दर्शन के संदर्भ में) आप्तवचन को भी शब्द के रूप में स्वीकृति प्रदान करता है। जहाँ न्याय दर्शन ईश्वरीय वचन को प्रामाणिक मानता है, वहाँ मीमांसा दर्शन वैदिक वाक्यों या कथनों को प्रामाणिक मानता है। न्याय दर्शन के अनुसार वैदिक कथन ही ईश्वरीय वचन है। अतएव आप्तवाक्य के रूप में शब्द या तो ईश्वर के कथन हैं या वेद के वाक्य हैं। दोनों ही परिस्थितियों में शब्द अर्थवान हैं। अंतएव सार्थक शब्द ही शब्द कहलाता है।

शब्द का दूसरा अर्थ शब्द को पद के रूप में सीमित करता है, तो शब्द का तीसरा अर्थ वाक्य के रूप में शब्द को अभिहित करता है। अतः भारतीय भाषाविश्लेषण के संदर्भ में शब्द का तात्पर्य पद और वाक्य है। शब्द केवल शब्द (word) नहीं है, वह वाक्य (sentence) भी है। पाश्चात्य भाषाविश्लेषण शब्दों के समुच्चय को ही वाक्य मानता है, शब्द को नहीं। लेकिन स्टेविंग की पुस्तक ''इन्ट्रोडक्शन टू मॉडर्न लॉजिक'' में एकपदीय वाक्य का भी

उल्लेख है। अतएव अपवादस्वरूप पाश्चात्य दर्शन में भी शब्द का अर्थ पद और वाक्य दोनों लिया जाता है।

अर्थ—किसी शब्द या पद में निहित शक्ति को अर्थ कहा जाता है। सामान्यतः शब्द या पद वर्णों का समूह होता है। परन्तु प्रत्येक वर्णसमुदाय में शक्ति निहित नहीं होती है। उदाहरण के लिए टघ, यगा, वरलक इत्यादि। इन वर्णसमुदायों अर्थात् शब्दों का कोई अर्थ नहीं है। लेकिन घट, गाय, कलरव इत्यादि शब्दों के अर्थ होते हैं। अतएव शब्द वही होता है जिसमें अर्थ अभिव्यक्ति करने की शक्ति है। इस शक्ति को 'वृत्ति' की संज्ञा दी गयी है। इसी वृत्ति के कारण शब्द और अर्थ के बीच सम्बन्ध पाया जाता है। शब्द और अर्थ के सम्बन्ध का ज्ञान शाब्दबोध कहलाता है।

शब्दार्थ सम्बन्ध—भारतीय दर्शन के विभिन्न सम्प्रदाय शब्दार्थ सम्बन्ध के विषय में मतैक्य नहीं रखते हैं। प्राचीन न्याय दर्शन के अनुसार शब्द और अर्थ का सम्बन्ध ईश्वर की इच्छा पर निर्भर करता है और शब्द में निहित मुख्य या मूल शक्ति या वृत्ति अजानिक संकेत में पायी जाती है। अजानिक संकेत शब्द का प्राकृतिक अर्थ है। ईश्वरीय इच्छा पर आश्रित अर्थ प्राकृतिक ही हो सकता है। कतिपय प्राचीन नैयायिकों की मान्यता है कि शब्द और अर्थ का सम्बन्ध अविनाभाव सम्बन्ध है। अविनाभाव का तात्पर्य है कि एक के बिना दूसरे का नहीं होना। यदि शब्द नहीं है, तो अर्थ भी नहीं है। इसी प्रकार अर्थ के अभाव में शब्द का भी अभाव होता है। इसलिए शब्दार्थ ईश्वरीय इच्छा पर निर्भर नहीं करता है। नव्य नैयायिकों के अनुसार शब्द और अर्थ का सम्बन्ध इच्छा मात्र पर निर्भर करता है, चाहे वह ईश्वर की इच्छा हो या मनुष्य की। शब्द में निहित अर्थ की शक्ति अजानिक संकेत और आधुनिक संकेत दोनों में पायी जाती है। आधुनिक संकेत शब्द के कृत्रिम अर्थ को कहा जाता है। वैज्ञानिक, दार्शनिक, गणितज्ञ किसी शब्द की रचना करते हैं, तो उसमें निहित अर्थ कृत्रिम कहलाता है। पतंजलि ने शब्द और अर्थ को अलग नहीं मानकर उनमें तादात्म्य भाव देखा है। महाभाष्य में कहा गया है कि "जो शब्द है, वही अर्थ है और जो अर्थ है, वही शब्द है।"[41] इस प्रकार पतंजलि की दृष्टि में शब्द वही है जो अर्थवान है। अर्थ में शब्द और शब्द में अर्थ निहित होता है। यही कारण है कि पतंजलि ने शब्द को संकेत मात्र माना है।

प्रभाकर के अनुसार शब्द की मूल शक्ति या वृत्ति दो प्रकार की होती है— आनुभाविक और स्मारिका। आनुभाविक मूल वृत्ति वह है जो शब्द में अर्थ प्रदान करती है। यह वृत्ति प्रत्यक्ष या अनुभव पर आधारित है। स्मारिका मूल वृत्ति वह है जो स्मृतिजन्य वस्तुओं को निर्देशित करती है, अर्थात् स्मृति पर आधारित शब्द वृत्ति स्मारिका कहलाती है। तात्पर्य है कि प्रभाकर किसी शब्द और उसके अर्थ का सम्बन्ध अनुभव और स्मृति पर आधारित मानता है। वस्तुतः स्मृति का आधार भी अनुभव है। नास्तिक सम्प्रदाय के अंतर्गत चार्वाक दर्शन ही मात्र अनुभव (प्रत्यक्ष) पर आधारित ज्ञान को सत्य मानता है, लेकिन वह स्मृति को स्वीकार नहीं करता है। अतएव चार्वाक दर्शन की दृष्टि में भी शब्द और अर्थ का सम्बन्ध अनुभवजन्य होता है। कुमारिल की मान्यता है कि शब्द और अर्थ में न तो तादात्म्य सम्बन्ध होता है, न ही भेदाभेद का सम्बन्ध। कतिपय मीमांसकों ने शब्दार्थ को शब्द से पृथक माना है। विश्वनाथ पंचानन ने

---

41. योऽयम् शब्दः स एव अर्थः।
    योऽयम् अर्थः स एव शब्दः।।
    पादटिप्पणी, उद्धृत प्रो॰ हरिमोहन झा, उपर्युक्त, पृ॰ 44

अपनी पुस्तक ''सिद्धान्त मुक्तावली'' में कहा है कि मीमांसकों के अनुसार पदार्थ (शब्दार्थ) से भिन्न संकेत ग्रहण करनेवाली शक्ति ही अभिधा (शब्द की मूल वृत्ति) नाम से अभिहित है।[42] श्रीकंठ दीक्षित की पुस्तक ''तर्क प्रकाश'' में कहा गया है कि ''कुमारिल के मत में पद (शब्द) और अर्थ से भिन्न-अभिन्न सम्बन्ध को ही वाक्य कहा जाता है।''[43] स्पष्ट है कि मीमांसा दर्शन में शब्दार्थ सम्बन्ध को लेकर भिन्न-भिन्न विचार पाये जाते हैं।

जैन दर्शन भी कतिपय मीमांसकों की भांति शब्द और अर्थ को स्वतंत्र मानते हुए उनमें भेद का सम्बन्ध स्वीकारता है। परन्तु बौद्ध दर्शन का विचार शब्दार्थ सम्बन्ध को लेकर अनूठा है। वह शब्द की मूल प्रवृत्ति को ''अपोह'' की संज्ञा देता है। अपोह का तात्पर्य ''नहीं नहीं'' से है। इसे समझने के लिए एक उदाहरण लिया जा सकता है। गाय का अर्थ वह पशु है जो ''अ-गाय नहीं है''। अ का अर्थ नहीं होता है। अतः शब्द और अर्थ का सम्बन्ध निषेधात्मक होता है जिसे अतद्व्यावृत्ति या तद्भिन्नाभिन्नत्व कहा जाता है। परन्तु वैयाकरणों की दृष्टि में शब्दार्थ सम्बन्ध निषेधात्मक नहीं होता है, बल्कि वाचक-वाच्य सम्बन्ध के रूप में शब्द और अर्थ एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं। जिस शब्द से किसी व्यवधान के बिना संकेत (अर्थ) का ग्रहण होता है, वही साक्षात संकेतित अर्थ का बोधक शब्द 'वाचक' कहलाता है। वाच्य उस संकेत द्वारा निर्देशित अर्थ को कहा जाता है। तात्पर्य यह है कि शब्द संकेत मात्र है, और उसमें निहित मूल वृत्ति अर्थ है। संकेत वाचक और मूल वृत्ति या अर्थ वाच्य है।

पतंजलि ने भी शब्द को संकेत मात्र माना है। शब्द संकेतवत होता है जो किसी पदार्थ (वस्तु) को सूचित करता है। किन्तु कुमारिल की आपत्ति है कि यदि शब्द संकेत मात्र हो, तो मानना होगा कि प्रत्यक्ष धुआँ आग का सूचक है। दूसरे शब्दों में, धुआँ देखने से ही आग का प्रत्यक्ष होना चाहिए। पर ऐसा नहीं होता है। अतः संकेत के रूप में शब्द की परिभाषा अत्यन्त विस्तृत है। इस परिभाषा के अनुसार शब्द और अर्थ में कोई अन्तर नहीं है। वह एक ही है। इस परिभाषा का दूसरा दोष है कि जबतक शब्द के अर्थ को नहीं जाना जाता है, तबतक शब्द होता ही नहीं है। तात्पर्य है कि शब्द का आधार अर्थ है, न कि अर्थ का आधार शब्द है। यह ''बैल के आगे गाड़ी जुतने'' की स्थिति (दोष) है। इन आरोपों का उत्तर देते हुए कहा गया है कि यद्यपि धुआँ आग का सूचक है, पर आग का वाचक नहीं है। वाचक और सूचक में अंतर होता है। वाचक वह है जो किसी शब्द में निहित अर्थ को अभिव्यक्त करता है, लेकिन सूचक वह है जो किसी शब्द की सूचना देता है या उस शब्द का निर्देश मात्र करता है। अतएव शब्द मात्र संकेतक नहीं होता है, बल्कि शब्द अर्थ की अभिव्यंजना भी है। यही कारण है कि शब्द और अर्थ में वाचक-वाच्य सम्बन्ध पाया जाता है।

जैन, बौद्ध और वैशेषिक दर्शन के अनुसार वाचक-वाच्य सम्बन्ध वस्तुतः व्याप्य-व्यापक संबंध है। व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध हेतु और साध्य के बीच पाया जाता है। हेतु और साध्य अनुमान के घटक हैं। जिस प्रकार हेतु से साध्य का निगमन होता है, उसी प्रकार वाचक से वाच्य निगमित होता है। वाचक शब्द है, जो हेतु का कार्य करता है और वाच्य अर्थ है, जो साध्य के समान है। अतएव वाचक-वाच्य सम्बन्ध शब्दार्थ सम्बन्ध न होकर अनुमान मात्र के घटक सम्बन्ध हैं। किन्तु न्याय दर्शन के अनुसार अनुमान के अंतर्गत हेतु और साध्य के बीच व्याप्ति सम्बन्ध पाया जाता है। यह अनिवार्य और अविनाभाव सम्बन्ध है। किन्तु वाचक-वाच्य

---

42. वही, (पाद टिप्पणी)
43. वहीं, (पाद टिप्पणी)

में व्याप्ति सम्बन्ध नहीं पाया जाता है। यदि ऐसा होता, तो ''भोजन'' शब्द कहते ही हमारे मुंह में ''भोजन'' आ जाता। ''आग'' शब्द कहते ही हमारे आसपास आग लग जाती। ''तलवार'' कहते ही 'सिर कटना' शुरू हो जाता। ''रेलगाड़ी'' कहते ही हमारे सामने रेलगाड़ी आकर खड़ी हो जाती। जब हम घड़ा, रेलगाड़ी, गाय आदि शब्दों का उच्चारण नहीं करते हैं, फिर भी ये वस्तुएँ कहीं-न-कहीं मौजूद रहती हैं। यदि कहा जाय ''घड़ा नहीं है'', तो इस वाक्य में 'घड़ा' शब्द का प्रयोग या उच्चारण है। लेकिन इससे घड़ा के नहीं होने का बोध मात्र शब्द तक सीमित है, न कि वास्तविक वस्तु के रूप में घड़ा की अनुपस्थिति का बोध होता है। तात्पर्य यह है कि शब्द और अर्थ के बीच व्याप्ति और अनिवार्य सम्बन्ध नहीं होने से शब्दार्थ को अनुमान की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। वाचक-वाच्य संबंध व्याप्ति सम्बन्ध नहीं, वरन् शब्दार्थ सम्बन्ध ही है। वाचक सूचक या निर्देशक है। यह शब्द है। वाच्य शब्द का अर्थ है। यह वस्तु है। अतएव शब्द और अर्थ का सम्बन्ध प्राकृतिक नहीं है, जैसा कि वैयाकरणों की मान्यता है। चूंकि शब्दार्थ सम्बन्ध अनिवार्य नहीं है, इसलिए इसे व्याप्ति नहीं कहा जा सकता और न ही शब्द ज्ञान या शाब्दबोध को अनुमान कहा जा सकता है। शाब्दबोध एक स्वतंत्र प्रक्रिया है।

ऊपर की पंक्तियों में शब्द की मुख्य या मूल वृत्ति एवं संकेत पदों का उल्लेख किया गया है। वस्तुतः शब्द की मुख्य या मूल वृत्ति को अभिधा कहा जाता है। अभिधा के अतिरिक्त शब्द की अन्य वृत्तियाँ भी हैं जिनका उल्लेख अगले अध्याय में किया जायेगा। यहाँ सिर्फ संकेत की विवेचना की जा रही है।